दैनिक जागरण

सफलता का मूल मंत्र अपनी प्रतिभा की पहचान में निहित है

नागरिकता विधेयक

यह ठीक नहीं कि तीन तलाक संबंधी विधेयक की तरह से नागरिकता संबंधी विधेयक पर भी पक्ष-विपक्ष के बीच कोई सहमति बनती नहीं दिख रही है। इसका बड़ा कारण विभिन्न दलों की ओर से अपने-अपने राजनीतिक हितों को जरूरत से ज्यादा अहमियत दिया जाना है। चूंकि आम चुनाव करीब आ गए हैं इसलिए यह स्वाभाविक है कि राजनीतिक दल अपने चुनावी हितों की चिंता करें, लेकिन इस कोशिश में राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। नागरिकता संशोधन विधेयक पर विपक्ष की आपत्ति का एक बड़ा आधार यह है कि आखिर इसमें पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, ईसाई, पारसी समुदाय के लोगों को ही भारतीय नागरिकता देने का प्रावधान क्यों है और मुस्लिम समुदाय के लोगों को बाहर क्यों रखा गया है? सैद्धांतिक तौर पर यह आपत्ति उचित नजर आती है, लेकिन व्यवहारिक तौर पर देखें तो इसका औचित्य नहीं नजर आता कि अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान के बहुसंख्यकों को वैसी ही रियायत दी जाए जैसी इन देशों के अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को देने की व्यवस्था की गई है। सभी को एक समान नजर से देखने की मांग करने वाले विपक्षी दल इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि उक्त तीनों देशों से प्रताड़ित होकर भारत की राह देखने वाले मूलतः वहां के अल्पसंख्यक ही होते हैं, न कि बहुसंख्यक। वे इस तथ्य को भी ओझल नहीं कर सकते कि बांग्लादेश से होने वाली अवैध घुसपैठ के कारण पश्चिम बंगाल और असम के साथ पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के तमाम इलाकों का सामाजिक संतुलन किस तरह गड़बड़ा गया है। आदर्शवादी सिद्धांत जमीनी हकीकत से मेल भी खाने चाहिए। यह कोई तर्क नहीं हुआ कि भारत दक्षिण एशिया का बड़ा देश है और उसे उन सभी को शरण देनी चाहिए जो इस देश में बसना चाहता है। भारत का संविधान भारत के लोगों पर लागू होता है, बाहर के नागरिकों पर नहीं और यह तय करना देश विशेष का अधिकार है कि वह किसे शरण दे और किसे नहीं?

आखिर विपक्षी दलों के साथ इस विधेयक का विरोध करने वाले अन्य लोग यह क्यों नहीं देख पा रहे हैं कि बाहरी लोगों की घुसपैठ और खासकर बांग्लादेशियों की अवैध बसाहट से असम की संस्कृति किस तरह खतरे में पड़ गई है। क्या सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर जो राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर तैयार हुआ उसका एक बड़ा मकसद असम की मूल संस्कृति को बचाना नहीं है? यह सही है कि असम और पूर्वोत्तर के कुछ अन्य राज्यों में नागरिकता विधेयक का विरोध हो रहा है, लेकिन इसकी वजह वह नहीं है जिसे विपक्षी दल बयान कर रहे हैं। असम और अन्य राज्यों में इस विधेयक का विरोध तो इस आशंका के चलते हो रहा है कि अगर पड़ोसी देशों के अल्पसंख्यकों को उनके यहां बसा दिया गया तो उनकी संस्कृति खत्म हो जाएगी? बेहतर हो कि केंद्र सरकार पूर्वोत्तर के उन लोगों और समूहों की चिंताओं को दूर करे जो नागरिकता विधेयक का विरोध कर रहे हैं। निःसंदेह उसे विपक्षी दलों से भी व्यापक विचार-विमर्श करना चाहिए ताकि बीच का कोई रास्ता निकल सके। राजनीतिक परिपक्वता का परिचय दिया जाए तो ऐसा हो सकता है।

उम्मीदों की रेल

झारखंड के कोयलाचंल की लाइफलाइन धनबाद-चंद्रपुरा रेल लाइन पर ट्रेन फिर से दौड़ पड़ी है। यह मौका इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि करीब डेढ़ साल बाद लाइफलाइन में स्पंदन दिखा। 15 जून, 2017 को इस रेल रूट पर गाड़ियों का परिचालन रोक दिया गया था, अंदेशा जताया गया था कि धनबाद से चंद्रपुरा के बीच करीब 14 किलोमीटर रेल मार्ग पर भूमिगत आग के कारण भू-धंसान होने का खतरा है। 26 जोड़ी यात्री गाड़ियां बंद कर दी गईं। इससे कुसुंडा से तेतुलिया के बीच जो सर्वाधिक अग्नि प्रभावित क्षेत्र बताया गया था, सात स्टेशनों के आसपास बसने वाली आबादी की आजीविका पर ग्रहण लग गया। अब रेल चलने से हसरतें फिर जवां होंगी, लोगों को रोजगार के साधन मिलेंगे और उनके जीवन में बहार आएगी। हर चीज का एक उद्देश्य होता है। बिना कारण कुछ हो तो खटकता है, इसके अलग-अलग मायने लगाए जाते हैं। धनबाद-चंद्रपुरा रेल लाइन के साथ भी माना जाए तो ऐसा ही हुआ। गाड़ियां क्यों बंद कर दी गईं, गाड़ियों को पुनः चलाने का फैसला क्यों लिया गया, इसपर सवाल उठ सकते हैं और उठ भी रहे हैं। यात्री ट्रेनें 15 फरवरी से चलेंगी। जैसा कि धनबाद के डीआरएम अनिल कुमार मिश्रा बताते हैं-कुछ दिनों तक मालगाड़ी चलाकर सब कुछ देखा-परखा जाएगा। उसके बाद ट्रेनें चलेंगी। ट्रेन चलाने का फैसला लोगों के लिए कितना राहत देनेवाला है और खुशियां लेकर आया है, इसका अंदाज इसी से लगाया जा सकता है कि कतरास में लोगों ने रात में ही जुलूस निकाला। इस जुलूस में रेल आंदोलन से जुड़े लोग, बुद्धिजीवी, कारोबारी सब जुटे थे। लोगों ने हाथ में तिरंगा लेकर खुशियों का इजहार किया। राष्ट्रीय ध्वज लेकर लोगों का सड़क पर उतरना साफ-साफ बताता है कि इस रेल मार्ग से लोगों की भावनाएं किस कदर जुड़ी हुई हैं। रेलगाड़ियों को फिर से चलाने का यह कदम निश्चित रूप से सराहनीय है। यह जरूर है कि जो आशंकाएं हैं, उन्हें नजरअंदाज नहीं किया जाए।

तालिबान के समक्ष अमेरिका का समर्पण

ब्रह्मा चेलानी

प्रस्तावित समझौता न केवल तालिबान के उभार पर मुहर लगाता है, बल्कि उसके संरक्षक पाकिस्तान की भी कूटनीतिक जीत सुनिश्चित कराता है

अफगानिस्तान के लिए अमेरिका के विशेष दूत जालमे खलीलजाद ने कतर में तालिबान के साथ जो प्रस्तावित समझौता किया उसे ऐसे देखा जाना चाहिए मानो अमेरिका ने एक आतंकी संगठन के समक्ष समर्पण कर दिया है। असल में अमेरिकी इतिहास की सबसे लंबी लड़ाई पर विराम लगाने के लिए राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप इतने व्यग्र हो चले हैं कि उन्हें कुछ भी मंजूर है। अफगानिस्तान में अमेरिका को फंसे हुए 17 साल से अधिक हो चले हैं। ऐसे में अमेरिका तालिबान के साथ जिस समझौते के प्रारूप पर सहमत हुआ है उसमें उसने दुश्मन की अधिकांश शर्तें मान ली हैं। तालिबान की सबसे बड़ी मांग यह थी कि अमेरिकी फौजें अफगानिस्तान से पूरी तरह वापस चली जाएं और उसे काबुल की सत्ता में साझेदारी भी मिले। इन मांगों पर भी अमेरिका ने मुहर लगा दी। बदले में इस आतंकी संगठन ने अमेरिका से एक तरह का फर्जी वादा ही किया कि वह अफगान धरती पर दूसरे आतंकी धड़ों को पैर नहीं जमाने देगा। हालांकि यह बात अलग है कि तालिबान को अफगानिस्तान में पहले से ही आइएसआइएस की तगड़ी चुनौती मिल रही है। इस 'प्रारूप' समझौते से हिंसा और भड़कने की आशंका है जिससे चुनी हुई अफगान सरकार भी अस्थिर हो सकती है। तथाकथित 'शांति समझौता' एक तरह से अफगान महिलाओं पर अत्याचार की तरह होगा, क्योंकि तालिबान उन पर वही मध्यकालीन कायदे थोपेगा जैसा उसने 1996-2001 के दौरान अपने निर्मम शासन में किया था। बीते कुछ वक्त में वहां महिलाओं और अन्य नागरिक अधिकारों के मोर्चे पर हुई प्रगति की स्थिति उलटने की आशंका बलवती हुई है।

अमेरिका ने अफगानिस्तान में जैसी शांति प्रक्रिया का वादा किया था उसके उलट उसने काबुल को भरोसे में लिए बगैर और उसके परामर्श के बिना ही तालिबान के साथ संभावित समझौता कर लिया। इसके बाद उसने अफगान राष्ट्रपति अशरफ गनी को इसके बारे में समझाने की कोशिश की जबकि गनी तालिबान को लेकर शंकालु रहे हैं और उन्होंने अमेरिका को आगाह भी किया कि वह तालिबान के समक्ष समर्पण की जल्दबाजी न दिखाए। इस प्रस्तावित करार में काबुल को तो अंधेरे में रखा ही गया, वाशिंगटन ने अपने 'प्रमुख रक्षा सहयोगी' भारत को भी भरोसे में लेने की जहमत नहीं उठाई।

राष्ट्रपति पद संभालते ही ट्रंप ने वादा किया था कि वह अफगानिस्तान में अमेरिका के लिए खराब हो रहे हालात को पलट देंगे, लेकिन दो साल बाद ही उन्हें हकीकत समझ आ गई कि वहां अमेरिका की नहीं, बल्कि इस्लामिक कट्टरपंथियों की ही जमीन मजबूत हो रही है। असल में ट्रंप उस काम को पूरा करना चाहते हैं जिसकी पहल उनके पूर्ववर्ती बराक ओबामा ने की थी, लेकिन वह अंजाम तक नहीं पहुंच पाई। यह पहल थी तालिबान के साथ समझौता करने की। तालिबान के साथ सीधे वार्ता की सुविधा के लिए ओबामा ने इस लड़ाकू संगठन को कतर की राजधानी दोहा में कूटनीतिक मिशन शुरू करने की अनुमति भी दिला दी। साथ ही 2013 में पांच कट्टर तालिबानी लड़ाकों को ग्वांतेनामो बे जेल से रिहा भी किया। इसके पीछे अमेरिका की मंशा अपने एक सैनिक की रिहाई ही नहीं, बल्कि तालिबान के साथ वार्ता के लिए मंच तैयार करना था। तब तालिबान ने वार्ता के लिए अपने पांच साथियों की रिहाई को पूर्व निर्धारित शर्त बना दिया था। इन पांचों को अमेरिका के दिवंगत सीनेटर जॉन मैकेन ने 'कट्टरपंथियों में भी कट्टर' करार दिया था।

अमेरिकी रुख में नरमी से तालिबान का हौसला और बढ़ा है। हो सकता है कि वह अपनी आतंकी गतिविधियों को और ज्यादा धार दे। पूरे अफगानी समाज की तो छोड़िए, तालिबान समूचे पश्तून समुदाय का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता। इनमें से अधिकांश पाकिस्तानी हैं जिन्हें पाकिस्तान की कुख्यात एजेंसी आइएसआइ ने ही प्रशिक्षित किया है। अमेरिकी रवैये में बदलाव से यही संदेश जा रहा कि वह अफगान युद्ध से आजिज आ चुका है और सम्मानजनक तरीके से विदाई के लिए बेसब्र है। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तावित समझौता न केवल तालिबान के उभार पर मुहर लगाता है, बल्कि उसके संरक्षक पाकिस्तान के लिए भी एक बड़ी कूटनीतिक जीत है। पाकिस्तान ने ही इस समझौते में बिचौलिये की भूमिका निभाई है। पाकिस्तान पर अमेरिकी भरोसा घटता जा रहा है, ऐसी धारणा के उलट प्रस्तावित समझौता और उसे जल्द अंतिम रूप देकर लागू करने की अमेरिकी हड़बड़ी यही दर्शाती है कि अमेरिका के लिए पाकिस्तानी सेना और आइएसआइ की उपयोगिता बनी हुई है। इस तरह सीमा पार आतंकवाद को संरक्षण देने के बदले पाकिस्तान कूटनीतिक लाभ कमा रहा है।

नैतिकता को ताक पर रखकर अमेरिका तालिबान के साथ जिस सौदेबाजी की दिशा में कदम बढ़ा रहा है उससे उसका यह संदिग्ध रवैया भी जाहिर होता है कि लगातार आतंकी हमलों के बावजूद अमेरिका की विदेशी आतंकी संगठनों की सूची में तालिबान का नाम आखिर क्यों नहीं जोड़ा गया? पाकिस्तान स्थित तालिबान के सीमा पार ठिकानों को निशाना बनाने को लेकर भी अफगानिस्तान में अमेरिकी सैन्य मिशन के हाथ एक तरह से बांध दिए गए। इस तरह तालिबान को कुचलने के बजाय अमेरिका ने उसे फिर से खड़ा होने और अफगानियों को आतंकित करने का अवसर दे दिया।

अमेरिका के लिए वक्त का पहिया घूमकर फिर वहीं आ गया है। अल कायदा की तरह तालिबान भी उन जिहादी समूहों में था जिन्हें सीआइए ने प्रशिक्षित कर 1980 के दशक में सोवियत संघ के खिलाफ इस्तेमाल किया था। समकालीन विश्व इतिहास में सबसे बड़ा आतंकी हमला झेलने के बाद अमेरिका ने अफगानिस्तान में मौजूद तालिबान और उसके प्रमुख आतंकियों को नेस्तनाबूद करने का फैसला किया था, मगर अब अपनी सम्मानजनक विदाई के फेर में वह अफगानिस्तान को उन्हीं क्रूर हाथों में सौंपने के लिए तैयार है जिनके खिलाफ उसने 17 साल पहले जंग छेड़कर सत्ता से बेदखल किया था।

ताजा घटनाक्रम भारत के लिए भी व्यापक निहितार्थ वाला है जिसके बारे में अमेरिका के पूर्व रक्षा मंत्री जिम मैटिस ने कहा था कि उसने अपनी उदार मदद से अफगान लोगों के दिल में खास जगह बनाई है। पाकिस्तान तालिबान और अन्य आतंकी समूहों का समर्थक है जिन्हें वह अफगानिस्तान और भारत के खिलाफ इस्तेमाल करता आया है। अगर अमेरिकी फौज खासकर आतंक विरोधी बल पूरी तरह अफगानिस्तान से लौट जाते हैं तो किसी भी अप्रिय स्थिति में हस्तक्षेप कर हालात सुधारने के लिए अमेरिका के पास कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी। अगर पाकिस्तान की मदद से तालिबान फिर से अफगानिस्तान की सत्ता पर काबिज हो जाता है तो 2002 से भारत द्वारा अफगानिस्तान को दी गई तीन अरब डॉलर से अधिक की मदद के फायदे भी धीरे-धीरे खत्म होते जाएंगे। एक ओर जहां अमेरिका नई दिल्ली के साथ रणनीतिक भागीदारी बढ़ा रहा है वहीं विरोधाभासी ढंग से भारत की अफगान नीति में ईरान और रूस की भूमिका की अनदेखी कर रहा है। अफगानिस्तान में अपने हितों की रक्षा के लिए भारत को हरसंभव उपाय करने होंगे, अन्यथा कश्मीर घाटी सहित भारत की सुरक्षा बुरी तरह प्रभावित होगी।

(लेखक सामरिक मामलों के विशेषज्ञ हैं)

response@jagran.com

मुस्लिम भी जकड़े हैं जातिवाद से

मुसलमानों के बीच अल्लामा इकबाल की यह उक्ति बेहद मशहूर है, 'एक ही सफ में खड़े हो गए महमूद व अयाज, न कोई बंदा रहा न कोई बंदा नवाज।' दरअसल जब भी मुसलमानों में गैर-बराबरी का सवाल उठता है तब इसी उक्ति के जरिये सभी लोगों के बराबर होने का दावा किया जाता है और फिर असमानता के सारे सवाल कहीं गुम हो जाते हैं। एक ऐसे समय जब मुस्लिमों में भी जातिवादी सोच अपनी गहरी पैठ बना चुकी है तब सवाल है कि बराबरी का यह दावा कितना दुरुस्त है? क्या वाकई मुस्लिमों की जाति व्यवस्था, दूसरे धर्मों की जाति-व्यवस्था से परे है? यह सवाल इसलिए भी कि हिंदू धर्म में सवर्णों और दलितों के बीच के मतभेद तो एक राष्ट्रीय मुद्दा बन जाते हैं, लेकिन मुस्लिम समाज में जड़ें जमा चुकी इस जाति व्यवस्था की विसंगतियां शायद ही प्रकाश में आ पाती हैं। देखा जाए तो मुस्लिमों में बराबरी का शिगूफा महज मस्जिद और शरीयत से जुड़े मसलों तक ही सीमित है। अन्यथा जातिवादी मानसिकता की बेड़ियों में पूरा मुस्लिम समाज ही जकड़ा हुआ है। कुछ हद तक तथाकथित बराबरी दिखाने की कोशिश भी होती है तो ऐसा केवल धार्मिक कारणों से ही संभव हो पाता है, लेकिन हर लिहाज से पिछड़े मुस्लिम अगड़े मुस्लिमों की उपेक्षा के शिकार ही होते रहे हैं। यही वजह है कि इन दो वर्गों के बीच अभी तक भरोसेमंद सामाजिक रिश्ते कायम नहीं हो सके हैं। बेटी-रोटी का रिश्ता तो दूर, पिछड़े मुसलमान अगड़ों की उपेक्षा का शिकार होते रहे हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो पिछड़े मुसलमानों की एक बड़ी आबादी थोड़े से अगड़े मुसलमानों के कारण विकसित नहीं हो सकी है।

2011 की जनगणना के मुताबिक देश में 14.2 फीसद मुस्लिम हैं। एक अध्ययन के अनुसार देश की लगभग 80 फीसद मुस्लिम आबादी पिछड़ी जाति से आती है वहीं किसी राज्य विशेष में तो यह आंकड़ा राष्ट्रीय औसत से भी अधिक है। बिहार में तो 85 फीसद से अधिक मुस्लिम पिछड़े हैं। ये सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तीनों ही रूप से पिछड़े रहे हैं। 'दलित मुस्लिम' की संकल्पना इसी का एक पहलू है। गौरतलब है कि मुस्लिमों को दो बड़े वर्गों मसलन-अशरफी और गैर-अशरफी में बांटा गया है। अशरफी यानी सवर्ण मुस्लिमों में मुगल, सैयद, शेख और पठान आते हैं और शेष सभी जातियां पिछड़ी यानी गैर-अशरफी के तहत आती हैं। हालांकि इस्लाम में जाति व्यवस्था की कोई संकल्पना नहीं है, लेकिन मौजूदा व्यवस्था परिस्थितिजन्य कही जा सकती है। जाति के आधार पर भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार की समस्या इसी का एक पहलू है। सच्चर कमेटी, मंडल आयोग और सतीश देशपांडे की रिपोर्ट ने भी मुस्लिमों में मौजूद इसी जाति व्यवस्था के कारण पिछड़ों के बिगड़ते हालात की तरफ संकेत किए हैं।

आर्थिक रूप से भी पिछड़े मुसलमान लगातार पिछड़ते जा रहे हैं। गरीबी और बेरोजगारी की समस्याएं इनमें अपनी जड़ें जमा चुकी हैं। आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण इनमें शिक्षा का घोर अभाव देखा जा सकता है। हालांकि देश के महज 57 फीसद मुस्लिम ही साक्षर हैं, लेकिन पिछड़े मुसलमानों की बात करें तो मुस्लिमों की कुल साक्षरता में उनकी भागीदारी चिंताजनक स्थिति में है। यही कारण है कि सरकारी सेवाओं में अगड़े मुस्लिमों का बोलबाला है। सरकारी सेवाओं में पिछड़ों की जो भी भागीदारी है उनमें उनकी मौजूदगी छोटे पदों पर ही देखी जाती है। शैक्षणिक रूप से पिछड़े होने की वजह से इनमें कोई बड़ा राजनीतिक नेतृत्व भी विकसित नहीं हो पाया है। यही वजह है कि पिछड़े मुस्लिम राजनीतिक रूप से अदृश्य सामाजिक समूह बनकर रह गए हैं। एक अध्ययन के मुताबिक देशभर के कुल मुस्लिम विधायकों में पिछड़ों की भागीदारी लगभग 30 फीसद ही है। उदाहरण के तौर पर राज्य विशेष की बात करें तो आजादी के बाद से वर्ष 2010 तक बिहार में 255 मुस्लिम विधायक बने जिनमें केवल 70 ही पिछड़े वर्ग से थे। कमोबेश यही हाल केंद्र की राजनीति में है। लगभग तीन चौथाई मुस्लिम सांसद सामान्य वर्ग के होते हैं, जबकि देश की मुस्लिम आबादी में तीन चौथाई से भी अधिक हिस्सेदारी पिछड़ों की है। ऐसे में यह राजनीतिक पिछड़ापन जहां मुस्लिमों की सामाजिक व्यवस्था की पोल खोलता है वहीं उन सभी सियासी दलों की नीयत पर भी सवालिया निशान लगाता है जो दबे-कुचलों के हिमायती होने का दम भरते रहे हैं।

पिछड़े मुस्लिमों में कोई भी बड़ा राजनीतिक नेतृत्व विकसित नहीं होने की वजह से वे उच्च वर्गों के उम्मीदवारों को ही हमेशा अपना प्रतिनिधि चुनने के लिए मजबूर होते रहे हैं। लिहाजा जहां एक तरफ अगड़े मुस्लिम हर लिहाज से सशक्त होते रहे, वहीं पिछड़े मुस्लिम कमजोर होते चले गए। निरंतर अनदेखी और उपेक्षा के कारण आज उनकी स्थिति हिंदू-दलितों से भी दयनीय हो गई है। यही कारण है कि दलित मुस्लिम अपने ही समाज के अंदर उच्च वर्गों के शोषण के खिलाफ आंदोलनरत हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में 'पसमांदा मुस्लिम महाज' का अगड़े मुस्लिमों और उलेमाओं के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन इसी का एक पहलू है। विडंबना है कि 21वीं सदी में भी पिछड़े मुस्लिमों को असमानता, उत्पीड़न और भेदभाव का सामना करना पड़ रहा है। नासूर बन चुकी इस जातिवादी मानसिकता से मुस्लिम समाज को आजादी दिलाने और देश के लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि उनके सवालों और आवाज को सामने लाया जाए।

आज पिछड़े मुस्लिमों के लिए एक ऐसा मंच विकसित करने की जरूरत है जो अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना के खिलाफ लड़ सके और पिछड़ों के लिए एक सम्मानपूर्ण जगह समाज में सुनिश्चित कर सके। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और राष्ट्रीय धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यक आयोग द्वारा 'दलित मुस्लिमों' को उनके हिंदू समकक्षों के साथ अनुसूचित जाति की श्रेणी में शामिल किए जाने की सिफारिश इसी का एक पहलू है। सरकार को भी इस दिशा में सकारात्मक पहल करनी चाहिए। आज जब भारत विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी और आर्थिक विकास में लगातार अपना परचम लहरा रहा है तब यह ठीक नहीं कि मुसलमानों का एक बड़ा तबका अभी भी दर्जी, नाई, सब्जी विक्रेता आदि जैसे पेशों में ही उलझा हुआ है। जब तक समाज को इस जातिवादी मानसिकता से आजादी नहीं मिल जाती तब तक पिछड़े और पसमांदा मुसलमानों को 'न्याय' का इंतजार रहेगा।

रिजवान अंसारी

वक्त आ गया है कि मुस्लिम समाज में जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था की विसंगतियां दूर करने पर ध्यान दिया जाए

(लेखक जामिया मिलिया इस्लामिया विवि में अध्येता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

स्वार्थ और परमार्थ

व्यक्ति के अंतःकरण को प्राप्त होने वाली शक्ति का सीधा संबंध उसके दृष्टिकोण से होता है। दृष्टिकोण यदि सेवा धर्म की ओर झुक जाता है तो इससे अंतःकरण को असाधारण शक्ति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति सेवा धर्म को अंगीकृत कर लेता है, उसके मन और मस्तिष्क से अहंकार के भाव मिटने लगते हैं। मस्तिष्क में जैसे-जैसे इस ऊर्जा की बढ़ोतरी होती है, वैसे-वैसे जीवन में उल्लास बढ़ता जाता है। छल-कपट, क्रूरता और कुटिलता मानसिक उद्वेग को न केवल उत्पन्न करती हैं, बल्कि इसे बढ़ाती भी रहती हैं जिससे जीवन अशांत, अव्यवस्थित एवं कर्कश हो जाता है। प्रत्येक मानव शरीर में आध्यात्मिक अमृत छिपा हुआ रहता है, जिसका सीधा संबंध परमार्थ से होता है। परमार्थ से प्राप्त बल इस छिपे हुए अमृत को गहराइयों से निकाल कर जीवन के धरातल पर ले आता है जो भौतिक जीवन को अमृतमयी कर देता है। जो लोग स्वार्थ के वशीभूत हैं उन्हें इस अमृत की महक तक नहीं मिल पाती है, जबकि यही अमृत उनके शरीर की गहराइयों में रहने के बावजूद शरीर के धरातल तक नहीं आ पाता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि गहराइयों से इसे पिघला कर लाने वाली मस्तिष्क की तरंगें इन लोगों में विकसित ही नहीं हो पाती हैं।

विभिन्न धर्म ग्रंथों में भी कहा गया है कि जो व्यक्ति केवल अपने सुख का ध्यान रखता है दूसरों के हित की परवाह नहीं करता है वह बड़ी-बड़ी विपत्तियों में फंसता रहता है। इनके जीवन में धन संपदा होने के बावजूद भी जीवन अंधकार से भरा रहता है, लोग इनसे घृणा करते हैं। प्यार पाने के लिए ये लोग तड़पा करते हैं। भले ही ये लोग कितनी ही संपदा इकट्ठी कर लें, लेकिन सही बात यही है कि ऐसे लोग ईश्वरीय दृष्टिकोण से सदैव घाटे में ही रहते हैं। इनकी सारी मानसिक सुख-शांति नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति परमार्थ सेवा त्याग और निःस्वार्थ प्रेम को अपने जीवन की प्रमुख नीति बनाकर जीवन जीते हैं वे जीवन के आनंद से परिपूर्ण होकर इसकी गहराइयों में भी प्रवेश करते हैं और प्राप्त होने वाले आनंद की अनुभूति को प्रबल करते रहते हैं। ऐसे लोगों की प्रशंसा करने वालों की संख्या बहुत अधिक होती है। वास्तव में जीवन का अमरफल भी ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ को महत्व देते हैं।

वीके जायसवाल

स्मार्ट गैजेट्स ने छीना आपसी संवाद

डॉ. मोनिका शर्मा

मौजूदा समय में हर कोई अपनी वर्चुअल दुनिया में इतना व्यस्त है कि साथ में कौन बैठा है, इसकी भी खबर नहीं रहती

हाल ही में जानी-मानी गायिका आशा भोसले ने सोशल मीडिया पर एक तस्वीर साझा की, जिसमें सभी लोग मोबाइल फोन पर बेहद व्यस्त दिख रहे हैं। यात्रा के दौरान ली गई इस तस्वीर के साथ बतौर शीर्षक उन्होंने लिखा कि बागडोगरा से कोलकाता तक मेरे पास कितने अच्छे लोगों का साथ है, लेकिन कोई भी बात करने के लिए नहीं है। यह वाकई एक कटु सच है कि मौजूदा समय में हर कोई अपनी वर्चुअल दुनिया में इतना व्यस्त है कि साथ में कौन बैठा है, इसकी भी खबर नहीं रहती। घर-दफ्तर की व्यस्तता से लेकर यात्रा की सहजता तक संवाद की कड़ी टूट गई है। बातचीत का पुल अब न अपनों के बीच बचा है और न ही अपरिचितों के साथ बनाने की कोशिश की जाती है। स्मार्ट गैजेट्स की स्क्रीन पर टकटकी लगाकर पाली गई यह व्यस्तता औरों के लिए ही नहीं खुद अपने लिए भी समय नहीं दे रही है।

निःसंदेह आशा भोसले की यह बात आभासी दुनिया में खोई आज की जीवनशैली के प्रति समाज को सचेत करने वाली है। साथ होकर भी संवाद के गुम होने की स्थितियों के प्रति पीड़ा जाहिर करने वाली है। जिसे लेकर गंभीरता से सोचा जाना जरूरी है, क्योंकि इस वर्चुअल दुनिया में आज हर उम्र, हर वर्ग के लोग व्यस्त हैं। कनाडा की यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया के शोध के मुताबिक स्मार्टफोन की लत से आमने-सामने बैठकर बात करने में दिक्कत होने लगती है। इसीलिए शोधकर्ताओं का कहना है कि तकनीक हमारे जीवन को आसान बनाने और मदद करने के लिए है, लेकिन हम तकनीक को ही जीवन का केंद्र बनाने लगे हैं। इस व्यवहारगत बदलाव ने संवाद की कड़ियां भी तोड़ दी है। अब न कुछ कहना जरूरी लगता है और न ही किसी के मन की सुनना, जबकि मानवीय जीवन का आधार तो आपसी संवाद ही है। सह-अस्तित्व के भाव की सबसे मजबूत कड़ी भी संप्रेषण को ही माना जाता है।

विचारणीय है कि आज भले ही स्मार्ट गैजेट्स हमारी जिंदगी का हिस्सा बन गए हैं, पर मशीनें इंसानी संवाद की जगह नहीं ले सकतीं। तभी तो आज के सफल, सजग और टेक्नोट्रेंड लोगों की एक बड़ी आबादी भीतर के खालीपन से जूझ रही है।

वर्चुअल माध्यमों के जरिये बाहरी दुनिया से जुड़ने की जद्दोजहद और बेवजह के आभासी संवाद के चलते अधिकतर लोग आत्मकेंद्रित और अकेलेपन को ही जी रहे हैं। आभासी संसार की दिखावटी दोस्ती और अनगल संवाद ने व्यावहारिक हालात इतने विकट कर दिए हैं कि हजारों से बतियाने और पल-पल की बात साझा करने वालों के पास असल में मन की पीड़ा साझा करने वाला कोई नहीं है, जबकि सच तो यह है कि अजब-गजब सी वर्चुअल भीड़ से घिरे लोग अपनों से ही दूर हो रहे हैं।

नतीजतन सबके बीच रहने और जीने के बावजूद भी सूनेपन की त्रासदी सभी के हिस्से आ रही है। स्मार्ट गैजेट्स की बदौलत मिला यह अकेलापन दिखाई तो नहीं देता, पर भीतर से बहुत कुछ बिखेर रहा है। कहना गलत नहीं होगा कि अंतरजाल की दुनिया कहने को तो सबको करीब ले आई है, पर अब असली जुड़ाव का अर्थ ही खो गया है।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

सैन्य ताकत की धौंस दिखाना गलत

'मूल समस्या की अनदेखी' शीर्षक से बीते मंगलवार को इस स्तंभ में एक पाठक ने मेरे आलेख पर असहमति जताई थी। मैं कहना चाहूंगा कि यह सही है कि हर देश को अपनी रक्षा तैयारियों को मजबूत करने का अधिकार है। किसी को इस पर आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए, लेकिन किसी भी देश के रक्षा प्रतिष्ठान के दो प्रमुख घटक होते हैं। मसलन एक अपने देश की संप्रभुता की रक्षा करने के लिए होता है तो दूसरा अन्य देशों पर आक्रमण करने या जवाबी कार्रवाई करने के लिए होता है। इस कसौटी पर देखें को अपनी जमीन की सुरक्षा के लिए अपनी रक्षा तैयारियों को पुख्ता करते रहना चीन का अधिकार है, लेकिन अपनी धरती से हजारों किलोमीटर दूर पूर्वी अफ्रीकी प्रायद्वीप के जिबूती में नौसैनिक अड्डे को लीज पर लेने और श्रीलंका तथा पाकिस्तान जैसे गरीब देशों को कर्ज के जाल में फंसाकर वहां क्रमशः हंबनटोटा और ग्वादर में बंदरगाह का निर्माण करने को कहीं से भी उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इसी तरह अपने सुरक्षा बलों को इस तरह से प्रशिक्षित करना और उन्हें ऐसे संसाधनों से लैस करना कि वे दूसरे देशों को जब चाहें तब बड़ी आसानी से दबाव में ला सकें, इसे भी रक्षा तैयारियों के लिहाज से सही नहीं कहा जा सकता है। अपने पड़ोसी ताइवान को बीजिंग अपनी सैन्य ताकत की हमेशा धौंस दिखाता रहता है। और इसी के बल पर वह भारत के साथ सीमा विवाद को भी अनावश्यक रूप से लटकाए हुए है। चूंकि इस स्तंभ की शब्दों की अपनी सीमाएं हैं, लिहाजा आने वाले दिनों में जल्द ही मैं 'भारत को क्या करना चाहिए' इस विषय पर भी एक आलेख लिखूंगा।

ब्रिगेडियर (सेवानिवृत्त) आरपी सिंह

मेलबाक्स

देश का संघीय ढांचा

सीबीआइ की कार्यशैली भी सवालों के घरे में है। उसकी सक्रियता विपक्षी राज्यों में ही क्यों ज्यादा दिखाई देती है? क्या इसके राजनीतिक मायने नहीं तलाशे जाएंगे? वैसे भी सीबीआइ पर राजनीतिक तौर पर काम करने के आरोप लगते ही रहे हैं। विपक्षी नेता केंद्र सरकार पर सीबीआइ के दुरुपयोग का आरोप लगाते रहे हैं। खुद भाजपा भी विपक्ष में रहकर ऐसे आरोप लगाती रही है। आज वह सता में है, तब यह आरोप उसके ऊपर लग रहे हैं। बेहतर हो कि सीबीआइ अपनी गिरती प्रतिष्ठा को ध्यान में रखे और ईमानदारी तथा निष्पक्षता के साथ काम करे। राज्यों की भी जिम्मेदारी है कि वे संघीय व्यवस्था को सीधे चुनौती देने से बचें। अगर केंद्र की किसी कार्रवाई पर एतराज है तो राज्य उचित फोरम पर अपनी बात रख सकते हैं। दोनों के ऊपर देश के संघीय ढांचे को बचाए रखने की जिम्मेदारी है। दोनों को एक-दूसरे के अधिकारों का सम्मान करना होगा। यही देश का संविधान भी कहता है। केंद्र और राज्यों के बीच रिश्ते जितने मधुर होंगे, हमारा लोकतंत्र उतना ही ज्यादा मजबूत बनकर उभरेगा। अभी केंद्र एवं पश्चिम बंगाल सरकार के बीच सीबीआइ जांच को लेकर जो तनाव देखने को मिला है वह उचित नहीं है। सीबीआइ केंद्रीय एजेंसी है, उसे किसी भी राज्य में जांच करने का अधिकार है, लेकिन इस संस्था का दुरुपयोग न हो, इसका ध्यान रखना भी केंद्र की जिम्मेदारी है। जो भी हो, इस मामले में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय सराहनीय है।

युधिष्ठिर लाल कक्कड़, गुरुग्राम

बीमार हो रहे लोग

आज लोगों की जीवनशैली अनियमित होती जा रही है। लोग अपने कार्यों में इस कदर व्यस्त हैं कि खुद के लिए वक्त ही नहीं निकाल पा रहे। नतीजतन वे जाने-अनजाने तनाव का शिकार होते जा रहे हैं। तनाव के कारण नींद न आना, ज्यादा क्रोध आना, उच्च रक्तचाप, स्ट्रोक जैसी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। लोगों को यह समझना होगा कि कार्य करना आवश्यक